RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-15, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2022

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-15 अंक - 4 सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2022

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** – पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय राष्ट्रीय चेतना जागरण और मैथिलीशरण गुप्त का योगदान

डॉ. मुकेश शर्मा
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

'राष्ट्र' की संकल्पना मानव सभ्यता जितनी ही प्राचीन मानी जाती है। यह केवल किसी निश्चित भू-भाग तक सीमित विचार नहीं है, बल्कि इसके अंतर्गत उस भू-भाग की सुरक्षा, शासन व्यवस्था, राजा और प्रजा के परस्पर कर्तव्य, अधिकार और उत्तरदायित्व भी सम्मिलित रहते हैं। प्राचीन काल से ही राष्ट्र को एक ऐसी इकाई के रूप में देखा गया है, जहाँ शासन और समाज के बीच संतुलन बना रहे तथा नागरिक अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सामूहिक हित की भावना से प्रेरित हों। इस दृष्टि से राष्ट्र राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है।

राष्ट्र का स्वरूप मूलत: 'स्व' अथवा 'व्यष्टि' के क्रमिक विस्तार से निर्मित होता है। जब व्यक्ति अपने संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर परिवार से जुड़ता है, तब परिवार की चेतना विकसित होती है। परिवारों के पारस्परिक संबंध और सहयोग से समाज का निर्माण होता है तथा समाज के सुव्यवस्थित, संगठित और सुदृढ़ स्वरूप से राष्ट्र का उदय होता है। इस प्रकार राष्ट्र कोई आकस्मिक संरचना नहीं, बल्कि मानव जीवन की प्राकृतिक और क्रमिक विकास-प्रक्रिया का परिणाम है। व्यक्ति से राष्ट्र तक की यह यात्रा सामाजिक उत्तरदायित्व और सामूहिक चेतना की परिपक्वता को दर्शाती है।

'नालंदा विशाल शब्द सागर' के अनुसार राष्ट्र उस राज्य या देश को कहा गया है, जिसमें एक ही भू-भाग पर निवास करने वाला लोक-समुदाय एक समान शासन व्यवस्था के अंतर्गत रहते हुए एकता के सूत्र में बँधा हो। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि राष्ट्र की अवधारणा केवल राजनीतिक सत्ता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें जन-सामूहिकता और एकात्मता का भाव भी निहित है। इसलिए राष्ट्र का स्वरूप मात्र भौगोलिक न होकर व्यापक और बहुआयामी होता है।

वास्तव में राष्ट्र में धरती, पर्वत, नदियाँ और प्राकृतिक संसाधन तो होते ही हैं, साथ ही उस भू-भाग पर निवास करने वाले लोगों की मानसिकता, भावनाएँ, आकांक्षाएँ और सांस्कृतिक चेतना भी सम्मिलित होती है। किसी राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसके भौतिक विस्तार से अधिक वहाँ के जन-जीवन की मनोभूमि से निर्मित होती है। इसी कारण राष्ट्र के स्वरूप में भू-भाग और जन-समूह के साथ-साथ जन-संस्कृति की अनिवार्य भूमिका मानी जाती है। संस्कृति, परंपराएँ, आचार-विचार, भाषा, साहित्य और जीवन-दर्शन मिलकर राष्ट्र की आत्मा को आकार देते हैं।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

डॉ. शिव कुमार मिश्र के अनुसार भूमि के माध्यम से भौगोलिक एकता, जन-गण के द्वारा राजनीतिक एकता और जन-संस्कृति के माध्यम से सांस्कृतिक एकता—इन तीनों के समुच्चय को राष्ट्र कहा जाता है। उनका यह मत राष्ट्र की समग्र और संतुलित व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिसमें किसी एक तत्व को प्रधानता न देकर सभी को समान महत्त्व दिया गया है। इसी क्रम में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल राष्ट्र को एक सजीव सत्ता के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार भूमि राष्ट्र का शरीर है, जन उसका प्राण है और जन-संस्कृति राष्ट्र का मन है। इन तीनों के सुंदर समन्वय और निरंतर उन्नति से राष्ट्र की आत्मा का निर्माण होता है। यह दृष्टिकोण राष्ट्र को केवल राजनीतिक इकाई न मानकर एक जीवंत सांस्कृतिक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

राष्ट्र चेतना :

'राष्ट्र' शब्द में 'घञ्' प्रत्यय के योग से 'राष्ट्रीय' शब्द की निष्पत्ति होती है और हिंदी भाषा में इसी से आगे चलकर 'राष्ट्रीयता' शब्द का निर्माण हुआ है। भाषिक दृष्टि से यह क्रम राष्ट्र से जुड़ी चेतना के क्रमिक विकास को भी प्रकट करता है। किसी विशेष राष्ट्र के गुणों, विशेषताओं और उसके प्रति गहन प्रेम तथा निष्ठा के भाव को राष्ट्रीयता कहा जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीयता किसी राष्ट्र की आत्म-चेतना है, जिसमें व्यक्ति और राष्ट्र के बीच भावात्मक, संवेदनशील और आत्मीय संबंध स्थापित होता है। यह मनुष्य की सहज और स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है, जिसके कारण वह अपने देश को मात्र एक भू-भाग न मानकर अपनी पहचान और अस्तित्व का आधार समझता है। इसी भावावेग में वह राष्ट्र की रक्षा, कल्याण और विकास के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करना भी गौरव का विषय मानता है।

सामान्यत: देश-प्रेम और राष्ट्रीयता को पृथक्-पृथक् अर्थों में देखने की प्रवृत्ति रही है, किंतु आधुनिक संदर्भों में ये दोनों शब्द भावात्मक दृष्टि से लगभग पर्यायवाची हो गए हैं। देश-प्रेम में जहाँ अपने देश के प्रति अगाध श्रद्धा, भक्ति और समर्पण का भाव निहित होता है, वहीं उसमें अन्य देशों के प्रति घृणा या द्वेष नहीं, बल्कि आदर और सम्मान की भावना भी समाहित रहती है। इसी विचार को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय ने राष्ट्रीयता को एक समन्वित राजनीतिक ध्येय से संबद्ध अवधारणा माना है, जिसमें किसी विशिष्ट भू-भाग में निवास करने वाला जन-समुदाय परस्पर सहयोग, सामूहिक उन्नति की आकांक्षा और उस भूमि के प्रति प्रेम तथा गर्व की भावना से प्रेरित होता है। यह परिभाषा राष्ट्रीयता को संकीर्ण भाव नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक और राजनीतिक चेतना के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

राष्ट्र की भाँति राष्ट्रीयता भी कोई स्थिर या जड़ भाव नहीं है, बल्कि यह सतत् विकसित होने वाली चेतना है। यह एक ऐसी विशिष्ट भाव-धारा है जिसमें राष्ट्र के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के तत्व समाहित रहते हैं। स्थूल तत्वों में भौगोलिक सीमा, प्राकृतिक परिवेश और भौतिक संसाधन आते हैं, जबकि सूक्ष्म तत्वों में सांस्कृतिक, आर्थिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, कलात्मक और भाषाई चेतना सम्मिलित होती है। इन सभी तत्वों के सामंजस्य से राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप निर्मित होता है।

राष्ट्रीय चेतना का प्राथमिक आधार राष्ट्र की भौगोलिक सीमा के प्रति निष्ठा है। यही भौगोलिक सीमा राष्ट्र की भूमि और उसकी पहचान को निर्धारित करती है। भूमि से जुड़ाव के बिना राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव नहीं है। इसी भूमि पर विकसित संस्कृति राष्ट्र की अनुप्रेरक आत्मशक्ति बनती है। सांस्कृतिक

परिवेश राष्ट्रीय चेतना को मानवीय और मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। संस्कृति के माध्यम से ही व्यक्ति अपने राष्ट्र के मूल्यों, आदर्शों और परंपराओं से जुड़ता है। राष्ट्रीयता के लिए सांस्कृतिक एकता एक अनिवार्य तत्व है, क्योंकि इसके बिना राष्ट्र में एकता की भावना सुदृढ़ नहीं हो सकती। यही सांस्कृतिक एकता आगे चलकर राष्ट्रीय एकता का रूप धारण करती है और देश-प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होती है।

राष्ट्रीय चेतना के विकास में अध्यात्म और धर्म की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब व्यक्ति राष्ट्र के विषय में चिंतन करता है, तो उसकी यह आकांक्षा होती है कि उसका राष्ट्र निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर रहे तथा गरिमा और गौरव को प्राप्त करे। जब यह भावना केवल राष्ट्र तक सीमित न रहकर विश्व-कल्याण की चेतना से जुड़ जाती है, तब वही भावना दिव्य राष्ट्रीय धर्म का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार सच्ची राष्ट्रीय चेतना संकीर्ण न होकर सार्वभौमिक मानव-कल्याण की ओर उन्मुख होती है।

राष्ट्रीय चेतना के अनुकूल शासन व्यवस्था भी अत्यंत आवश्यक है। प्राकृतिक तत्व जहाँ राष्ट्र के बाह्य आधार हैं, वहीं राजनीतिक व्यवस्था उसका प्राण-तत्व है। 'स्व' और 'तंत्र' से प्राप्त स्वतंत्रता राष्ट्र को विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। स्वतंत्रता के अभाव में राष्ट्रीय चेतना का पूर्ण विकास संभव नहीं होता। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही मानवतावादी आदर्शों से युक्त राष्ट्रीय चेतना सुदृढ़ रूप में विकसित हो पाती है।

इतिहास और परंपराएँ भी राष्ट्रीय चेतना को ऊर्जा और शक्ति प्रदान करती हैं। ऐतिहासिक स्मृतियाँ राष्ट्र को उसकी गौरवशाली विरासत से जोड़ती हैं और नागरिकों में स्वाभिमान तथा आत्म-सम्मान का भाव जगाती हैं। ये परंपराएँ राष्ट्र को एक विशिष्ट भाव-धारा से जोड़कर उसकी पहचान को स्थायित्व प्रदान करती हैं।

जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन-यापन के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए सुदृढ़ और अनुकूल अर्थ-व्यवस्था अपेक्षित होती है। आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक संपन्नता राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाती है और राष्ट्रीय चेतना को ठोस आधार प्रदान करती है। आर्थिक रूप से सशक्त राष्ट्र ही अपने नागरिकों को सुरक्षा, सम्मान और विकास के अवसर प्रदान कर सकता है।

राष्ट्रीय चेतना का विकास समाज के अपनत्व और सहयोग की उर्वर भूमि पर होता है। सामाजिक समन्वय, पारस्परिक सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना इसके अनिवार्य आधार हैं। इसी से राष्ट्रीय चेतना में देश-प्रेम की पवित्र धारा, प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अनुराग, धर्म और संस्कृति के प्रति निष्ठा, परंपराओं के प्रति आस्था तथा स्वाभिमान का भाव विकसित होता है। इन सभी के समन्वय से 'सर्वजन हिताय' की भावना राष्ट्रीय चेतना का अनुपमेय स्वरूप प्रस्तुत करती है।

साहित्य मानव, समाज और राष्ट्र के चिंतन का सशक्त माध्यम है। साहित्य के माध्यम से राष्ट्र की विकासोन्मुखी चेतना को दिशा और ऊर्जा प्राप्त होती है। कवि अत्यंत संवेदनशील प्राणी होता है, जिसकी रचनाओं में युगीन परिस्थितियों, समस्याओं और संघर्षों का सजीव चित्रण मिलता है। साथ ही वह उनके समाधान की राह भी दिखाता है। इसी कारण कहा गया है कि साहित्य समाज का केवल दर्पण ही नहीं, बल्कि पथ-प्रदर्शक दीपक भी है।

मैथिलीशरण गुप्ती राष्ट्रीयता :

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना :

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली कवि थे। उनमें अपने युग को समझने और उसकी चेतना को काव्य में रूपायित करने की विलक्षण क्षमता थी। उन्होंने युग की परिस्थितियों को गहराई से परखा और उन्हें अपनी कविता में सजीव अभिव्यक्ति दी। गुप्तजी ऐसे समय साहित्य के क्षेत्र में आए, जब श्रद्धा का युग समाप्त हो रहा था और विवेक तथा तर्क का युग विकसित हो रहा था। यह काल समस्याओं के समाधान और जातीय नवोत्थान की आकांक्षा से युक्त था, जिसमें हिंदू जाति के पुनर्जागरण का प्रश्न प्रमुख था।

इस युग में पौराणिक कथाएँ नए अर्थों और संदर्भों में ग्रहण की जा रही थीं। बाह्य और आंतरिक प्रेरणाओं के प्रभाव से गुप्तजी को भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण अतीत जातीय जीवन के पुनरुत्थान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त आदर्श प्रतीत हुआ। इसी कारण उन्होंने पौराणिक आदर्शों को अपनाकर उन्हें राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा। उनकी कविता का विकास इसी नवजागरणशील वातावरण में हुआ और उसी की चेतना को आत्मसात् करते हुए वह परिपक्व हुई। नवोत्थान की भावना को गुण और परिमाण—दोनों ही दृष्टियों से गुप्तजी के काव्य में जो स्थान मिला, वह हिंदी साहित्य में विरल है।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत एक संक्रमणशील अवस्था से गुजर रहा था। पराधीनता के कारण राष्ट्रीय आत्मविश्वास डगमगा चुका था और जीवन से उल्लास लुप्त हो गया था। इसी काल में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारतीय समाज में नई चेतना का संचार हुआ। नवजागरण की इस प्रक्रिया में अतीत के गौरवपूर्ण चित्रण के पीछे राष्ट्र-प्रेम की सशक्त प्रेरणा थी। परतंत्र भारत के लिए उसका स्वर्णिम अतीत गर्व और प्रेरणा का स्रोत था, जो राष्ट्र को उन्नति की दिशा में ले जा सकता था।

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना का सशक्त प्रसार 'स्वदेश संगीत', 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'जयद्रथ वध', 'जय भारत' और 'रंग में भंग' जैसी रचनाओं में हुआ है। इनमें 'स्वदेश संगीत' कवि के राष्ट्रीय गीतों का महत्त्वपूर्ण संकलन है, जिसमें राष्ट्रीय जागरण, मातृभूमि-प्रेम, हिंदी भाषा के माध्यम से राष्ट्रोन्नयन, स्वतंत्रता संग्राम का उत्साह तथा नारी-शक्ति के आह्वान की प्रभावशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों में गुप्तजी आत्मबल और नैतिक शक्ति को राष्ट्र की वास्तविक शक्ति मानते हैं और मातृभूमि के सम्मान को अडिग बताते हैं। इसी कारण 'स्वदेश संगीत' को इस युग की एक विशिष्ट राष्ट्रीय उपलब्धि माना जाता है, क्योंकि इसमें राष्ट्रीय चेतना का व्यापक, प्रत्यक्ष और सांस्कृतिक स्वरूप सजीव रूप में उभरता है।

राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से गुप्तजी के प्रबंध काव्य 'भारत-भारती' का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस कृति में उनकी ओजस्वी राष्ट्रवाणी स्पष्ट रूप से मुखर होती है। कवि अतीत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में राष्ट्र की स्थिति पर विचार करते हुए आत्मचिंतन का आह्वान करता है। गुप्तजी नवयुवकों को राष्ट्र का भविष्य मानते हैं और उन्हें देशोद्धार का प्रमुख वाहक स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि राष्ट्र को संकटों से मुक्त कर एकसूत्र में बाँधने का कार्य युवा शक्ति ही कर सकती है।

गुप्तजी की दृष्टि में राष्ट्रीय एकता तभी संभव है, जब देश में पवित्र भावना, सुख और समृद्धि का

पुनरुत्थान हो। इसी कारण वे भारतवर्ष को पुनः पुण्यभूमि बनाने और उसके खोए हुए गौरव को लौटाने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना आस्था, आत्मबल, युवा-शक्ति और सांस्कृतिक गौरव के माध्यम से राष्ट्र को पुनर्जागरण की ओर ले जाने वाली प्रेरक शक्ति बन जाती है।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में अतीत का चित्रण सुप्त भारतवासियों को जगाने वाली संजीवनी के रूप में उपस्थित है और यही उनके काव्य का मूल स्वर भी है। राष्ट्र और स्वाभिमान के प्रति वे अत्यंत संवेदनशील थे। मातृभूमि के सम्मान पर किसी भी प्रकार की आघात उन्हें असह्य प्रतीत होता था और देश का अहित वे अपना निजी अहित मानते थे। उनकी कविता में जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानकर उसकी सेवा और रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग तक का संकल्प व्यक्त हुआ है।

पराधीनता की पीड़ा ने गुप्तजी के हृदय को गहराई तक आंदोलित किया था। यही वेदना उनके भीतर राष्ट्रीय चेतना को मुखर स्वर प्रदान करती है। उनकी यह राष्ट्रीय भावना केवल भावात्मक उद्गार नहीं, बल्कि जागरण और कर्तव्य-बोध का सशक्त आह्वान है। वर्तमान संदर्भों में भी गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है, क्योंकि वह संकीर्ण राष्ट्रवाद नहीं, बल्कि समाजोत्थान और मानव-कल्याण से जुड़ी हुई है।

हिंदू धर्म को वे राष्ट्र-धर्म और मानव-धर्म का पूरक एवं प्रतीक मानते हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने हिंदू समाज की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का विवेचनात्मक और ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार गुप्तजी का काव्य राष्ट्रीय स्वाभिमान, सांस्कृतिक चेतना और मानवतावादी दृष्टि से अनुप्राणित होकर भारतीय नवजागरण की सशक्त अभिव्यक्ति बन जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में 'हिंदू' शब्द का अर्थ किसी एक जाति या धर्म तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भारतभूमि पर निवास करने वाले समस्त जाति-धर्मों का पोषक और प्रतिनिधि है। उनके लिए अपने लोगों के प्रति समर्पण सर्वोपरि है; अपनों के लिए नरक भी स्वर्ग के समान है। यह भावना उनके काव्य में राष्ट्र के प्रति आत्मोत्सर्ग और स्वाभिमान के रूप में प्रकट होती है।

गुप्तजी अपने युग की चेतना, समस्याओं और उनके समाधान के लिए संघर्षरत महापुरुषों से गहरे प्रभावित थे। महात्मा गाँधी का प्रभाव उन पर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। 'साकेत' में गाँधीवाद की सेवा, त्याग और नैतिक दायित्व की भावना साकार होती है, जहाँ शासन को भोग नहीं, बल्कि बलिदान और उत्तरदायित्व का क्षेत्र माना गया है। इस दृष्टि से गुप्तजी स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्येक वर्ग की सहभागिता के समर्थक थे और उन्होंने हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों को भी राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरित किया।

भाषा के प्रश्न पर गुप्तजी प्रांतीय भाषाओं के विकास के समर्थक होते हुए भी एक राष्ट्रभाषा के पक्षधर थे। वे भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधता में निहित एकता को भली-भाँति पहचानते थे और संकट के समय संपूर्ण राष्ट्र के एकजुट होने में विश्वास रखते थे।

गुप्तजी परंपरानिष्ठ और संस्कारवान कवि हैं। भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों में उनकी अटूट आस्था है, किंतु वे युग-धर्म की उपेक्षा नहीं करते। परंपरा और आधुनिकता का संतुलन उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है। धार्मिक सहिष्णुता और मानवतावादी दृष्टि से प्रेरित उनका जीवन और काव्य 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के आदर्श को साकार करने का संकल्प व्यक्त करता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने प्राचीन संस्कृति, प्रकृति के वैभव और गौरवशाली अतीत का चित्रण केवल आत्मगौरव के लिए नहीं किया, बल्कि उसके आलोक में वर्तमान को समझने और सुधारने का प्रयास किया है। वे मानते हैं कि वर्तमान निरंतर अतीत को नया अर्थ देता है और इसी प्रक्रिया से अतीत का जीवंत अंश वर्तमान में सक्रिय रहता है। इसी दृष्टि का उदाहरण 'साकेत' में मिलता है, जहाँ गुप्तजी ने राम को वाल्मीकि और तुलसी के राम से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। 'साकेत' में राम ईश्वरीय अवतार से अधिक युग-पुरुष हैं, जो निर्बल, दीन और शोषित जनों के कल्याण के लिए क्रांति का संदेश लेकर आते हैं और पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने का संकल्प व्यक्त करते हैं।

गुप्तजी भारतीय संस्कृति और प्रकृति के रम्य चित्र उकेरते हुए वर्तमान भारत की दीन-हीन और मलिन अवस्था का भी सजीव चित्रण करते हैं। उन्होंने भारत-भूमि को पुण्य-लीला स्थल, ऋषि-भूमि और संसार का सिरमौर बताकर उसकी गौरव-गरिमा का गान किया है, किंतु साथ ही भारत माता की दुर्दशा को भी गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में यह स्पष्ट है कि जब तक जनसाधारण में सुख-समृद्धि का संचार नहीं होता, तब तक राष्ट्रीय चेतना का पूर्ण विकास संभव नहीं है।

इसी कारण गुप्तजी की कविता में सामान्य जन की पीड़ा, अकाल और गरीबी का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'भारत-भारती' में स्वर्णिम अतीत के विपरीत वर्तमान की दरिद्रता, निराशा और असुरक्षा का मार्मिक वर्णन है। इस प्रकार गुप्तजी का काव्य अतीत के गौरव और वर्तमान की वेदना को जोड़कर राष्ट्रीय चेतना को सामाजिक उत्तरदायित्व और जनकल्याण की दिशा में प्रेरित करता है।

समाज में व्याप्त अनाचार, जाति-भेद, धार्मिक संघर्ष, अंध-परंपराएँ, वर-कन्या का विक्रय, मिलावट द्वारा धनार्जन, नशेबाजी, आत्मविस्मृति, पारिवारिक कलह और अन्य सामाजिक कुरीतियाँ राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में गंभीर बाधाएँ हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य के माध्यम से इन विकृतियों पर सशक्त प्रहार किया है। उनके साहित्य में जहाँ सामाजिक सुधार की तीव्र चेतना दिखाई देती है, वहीं भारत का सांस्कृतिक स्वरूप भी सुदृढ़ होकर उभरता है। गुप्तजी पूर्णत: स्वदेशी विचारधारा के कवि थे, इसी कारण उन्होंने पाश्चात्य रीति-नीति के अंधानुकरण का विरोध किया और भारतीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया।

नारी-चेतना गुप्तजी की राष्ट्रीय चेतना का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। नवजागरण की चेतना ने युगों से शोषित, उपेक्षित और अपमानित भारतीय नारी को नई दृष्टि से देखा। इसके परिणामस्वरूप मध्यकालीन समाज में भोग्या और दीन-हीन समझी जाने वाली नारी एक सशक्त और उज्ज्वल रूप में सामने आई। गुप्तजी नारी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे, क्योंकि वे नारी को केवल गृहस्थी तक सीमित नहीं, बल्कि पत्नी के रूप में सहयोगिनी, माता के रूप में संस्कारदात्री तथा स्वतंत्र बुद्धि और कर्म-कुशलता के माध्यम से समाज और राष्ट्र के विकास में सहभागी शक्ति के रूप में देखना चाहते थे। इस प्रकार नारी-सशक्तिकरण उनके राष्ट्रीय चिंतन का अभिन्न अंग बन जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त यह भली-भाँति जानते थे कि स्त्री-समस्या के समाधान के बिना न तो राष्ट्रीय चेतना का सम्यक विकास संभव है और न ही समाज तथा राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। इसी कारण उनके काव्य में नारी की उपेक्षा और दुर्दशा के प्रति गहरी चिंता व्यक्त हुई है। वे समाज की उस मानसिकता पर कटाक्ष करते हैं, जिसमें पशु-पक्षियों तक का ध्यान रखा जाता है, किंतु नारियों की पीड़ा की उपेक्षा कर दी जाती है। नारी के प्रति यह उदार और मानवीय दृष्टि उनकी अनेक रचनाओं में विविध रूपों

में व्यक्त हुई है, जहाँ उन्होंने नारी को माता, बहन, प्रेमिका, सहधर्मिणी, वीरांगना, परित्यक्ता और विरहिणी के रूप में सजीवता से चित्रित किया है।

गुप्तजी आधुनिक समाज को यह संदेश देना चाहते हैं कि पातिव्रत्य का अर्थ केवल पत्नी का अनुकरण या सहगमन नहीं है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर पति को उसके उच्च लक्ष्य से विचलित होने से रोककर सही मार्ग दिखाना भी है। 'पंचवटी' में नारी का यह सशक्त और गौरवपूर्ण रूप विशेष रूप से उभरकर सामने आता है। गुप्तजी ऐसी नारी की कल्पना करते हैं, जो आत्म-गौरव, आत्म-विश्वास और आत्म-शक्ति से युक्त हो। यह तभी संभव है, जब नारी पराश्रित न रहकर स्वावलंबी बने और अपने जीवन का संचालन स्वयं कर सके।

इन सभी विचारों के आलोक में स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तजी सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि हैं। राष्ट्रीय चेतना उनके काव्य की आत्मा है और उनकी प्रत्येक रचना राष्ट्र-निर्माण की भावना से अनुप्राणित है। उन्होंने राष्ट्र के जन-जीवन को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर परखा और उसे नवीन दिशा देने का प्रयास किया। सामाजिक विकास, धार्मिक आडंबरों का विरोध, आर्थिक शोषण के प्रति प्रतिरोध, राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति की आकांक्षा तथा मातृभूमि की स्वतंत्रता और अखंडता के लिए आत्मोत्सर्ग—ये सभी तत्व गुप्तजी की राष्ट्रीय काव्यधारा में समाहित हैं। इस प्रकार उनका समस्त काव्य राष्ट्रीय चेतना के व्यापक परिवेश का स्पर्श करता हुआ देश को संगठन, शक्ति, उत्साह और रचनात्मक कर्मों की प्रेरणा प्रदान करता है।

मैथिलीशरण गुप्त देश के हर वर्ग, हर जाति और हर संप्रदाय के लोगों के बीच आपसी सामंजस्य और सौहार्द की भावना विकसित करना चाहते थे, ताकि राष्ट्र में सुदृढ़ एकता स्थापित हो सके। उनका विश्वास था कि राष्ट्रीय चेतना का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब समाज में पारस्परिक समझ और एकजुटता का वातावरण हो। उनकी कल्पना की राष्ट्रीय चेतना में न जाति और धर्म का भेद है, न ऊँच-नीच का अहंकार और न ही निर्धन और संपन्न के बीच कोई दूरी। वहाँ सभी नागरिक समानता, सम्मान और साझी जिम्मेदारी के भाव से राष्ट्र के निर्माण में सहभागी होते हैं।

निष्कर्षत: मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना भारतीय राष्ट्र-भावना की समग्र और सजीव अभिव्यक्ति है। उनके काव्य में राष्ट्र भूमि, जन और संस्कृति के समन्वय से निर्मित एक चेतन सत्ता के रूप में उपस्थित है। गुप्तजी ने गौरवशाली अतीत के माध्यम से वर्तमान को जाग्रत किया और समाज में व्याप्त पराधीनता, अज्ञान, कुरीतियों, असमानता और आत्मविस्मृति के विरुद्ध राष्ट्रीय जागरण का स्वर उठाया। उनकी राष्ट्रीय भावना संकीर्ण नहीं, बल्कि समन्वयात्मक और मानवतावादी है, जिसमें जाति, धर्म, वर्ग और संप्रदाय का कोई भेद नहीं है। नारी-सशक्तिकरण, सामाजिक सुधार, स्वदेशी चेतना, सांस्कृतिक गौरव, युवाशक्ति का आह्वान और आर्थिक-सामाजिक समानता उनके राष्ट्रीय चिंतन के प्रमुख आधार हैं। साहित्य को उन्होंने राष्ट्र-जागरण का प्रभावी माध्यम माना और काव्य द्वारा जन-जीवन को संगठन, आत्मबल और कर्तव्यबोध की प्रेरणा दी।

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त का संपूर्ण काव्य राष्ट्र-निर्माण, मानव-कल्याण और राष्ट्रीय एकता का संदेश देता हुआ उन्हें हिंदी साहित्य में सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रकवि' के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन, झाँसी, प्रथम प्रकाशन 1912; प्रचलित संस्करण 2005
2. मैथिलीशरण गुप्त, स्वदेश संगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003
3. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008
4. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
5. मैथिलीशरण गुप्त, जयद्रथ वध, साहित्य भवन, प्रयागराज, 1998
6. मैथिलीशरण गुप्त, रंग में भंग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
7. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2010
8. डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिंदी कविता, राष्ट्रीय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
9. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
10. डॉ. शिवकुमार मिश्र, राष्ट्रीय चेतना और हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
11. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय संस्कृति के प्रतीक, चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी, 1999
12. बाबू गुलाबराय, राष्ट्रीयता और संस्कृति, साहित्य भवन, प्रयागराज, 1968
13. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी कविता का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
14. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1995
15. डॉ. रामविलास शर्मा, परंपरा और आधुनिकता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
16. डॉ. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
17. डॉ. कमल किशोर गोयनका, द्विवेदी युग और राष्ट्रीय चेतना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
18. नलिन विलोचन शर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
19. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2002
20. डॉ. सुशीला सिंह, हिंदी कविता में नारी चेतना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008